

मेसर्स शूलाइन  
बनाम  
सेवा कर आयुक्त एवं अन्य

(2017 की दीवानी अपील संख्या 10214)

10 अगस्त, 2017

[माननीय न्यायमूर्ति श्री ए.के. सीकरी एवं माननीय न्यायमूर्ति श्री अशोक भूषण]

साम्य । सेवा कर की वैधता का निर्धारण अवधि 9 जुलाई, 2004 से 31 मार्च, 2006 के लिए किया जाना था । सेवा कर की मांग की वैधता की पुष्टि सेवा कर के संयुक्त आयुक्त द्वारा की गई । अपीलकर्ता द्वारा उक्त आदेश के विरुद्ध कोई वैधानिक अपील दायर नहीं की गई । तत्पश्चात, अपीलकर्ता द्वारा सेवा कर का भुगतान किया गया । तथापि, अपीलकर्ता इस तथ्य से अवगत था कि सेवा कर के संबंध में अनेक अन्य वाद लंबित थे । उन अन्य वादों में यह विनिश्चित किया गया कि संबंधित समय में उपयुक्त प्रावधान के अभाव में सेवा कर देय नहीं था तथा यह केवल 18 अप्रैल, 2006 से देय हुआ, जब धारा 66 क को समाविष्ट किया गया । तत्पश्चात, अपीलकर्ता द्वारा विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर की गई, जिसे विलंब तथा उपेक्षा के कारण संधार्य नहीं मानते हुए निरस्त कर दिया गया । यह निर्णय किया गया कि स्थापित विधिक स्थिति यह है कि प्रश्नगत अवधि के लिए यह सेवा कर देय नहीं था, क्योंकि ऐसी देयता 18 अप्रैल, 2006 से उत्पन्न हुई । यह विधिक स्थिति केवल उन व्यक्तियों तक सीमित नहीं है जिन्होंने न्यायालय का आश्रय लिया, बल्कि यह विधि की घोषणा है । इसे सभी पर बाध्यकारी आदेश के रूप में माना जा सकता है । प्रस्तुत वाद में, साम्य का संतुलन इस प्रकार स्थापित किया जाएगा कि दंड एवं ब्याज के भुगतान पर बल नहीं दिया जाएगा । अपीलकर्ता द्वारा विलंब से न्यायालय का आश्रय लिया गया, अतः वह पहले से भुगतान किए गए सेवा कर की वापसी का अधिकारी नहीं हो सकता, किन्तु साथ ही, अपीलकर्ता को उस कर पर, जो विधि के अनुसार देय नहीं था, लगाए गए

किसी भी ब्याज एवं दंड के भुगतान के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए । वित्त अधिनियम, 1994 । धारा 66 क।

विलंब/उपेक्षा । सेवा कर की मांग की वैधता को चार वर्ष के पश्चात चुनौती दी गई । अपीलकर्ता को सेवा कर के अपूर्ण भुगतान के संबंध में कारण बताओ सूचना-पत्र प्राप्त हुआ । अपीलकर्ता ने उक्त कारण बताओ सूचना-पत्र का प्रतिवाद किया तथा सेवा कर की वैधता को चुनौती दी । सेवा कर की मांग की वैधता की पुष्टि सेवा कर के संयुक्त आयुक्त द्वारा की गई । अपीलकर्ता द्वारा उक्त आदेश के विरुद्ध कोई वैधानिक अपील दायर नहीं की गई । अपीलकर्ता इस तथ्य से अवगत था कि अनेक अन्य वाद लंबित थे । उन अन्य वादों में यह विनिश्चित किया गया कि सेवा कर देय नहीं था । तत्पश्चात अपीलकर्ता द्वारा विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर की गई, किन्तु उसे चार वर्ष के विलंब तथा उपेक्षा के कारण संधार्य नहीं मानते हुए निरस्त कर दिया गया । खंड पीठ ने भी सहमति व्यक्त करते हुए उक्त आदेश की पुष्टि की । यह अभिनिर्धारित किया गया कि संयुक्त आयुक्त द्वारा आदेश पारित किए जाने के पश्चात अपीलकर्ता द्वारा उस आदेश को चुनौती देते हुए कोई वैधानिक अपील दायर नहीं की गई । जब अपीलकर्ता ने मांग को चुनौती नहीं दी और केवल अन्य समान वादों में कार्यवाहियों को देखता रहा, तब उन वादों में दिए गए निर्णय अपीलकर्ता को विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर करने हेतु कोई वाद हेतु प्रदान नहीं करते । अतः जब यह प्रतीत हो कि दावेदारों ने समय नष्ट किया अथवा उसे व्यर्थ गंवाया और समय पर विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर करने के लिए तत्पर नहीं हुए, तब ऐसे मामलों में न्यायालय को राहत प्रदान करने में अत्यंत सावधानी बरतनी चाहिए । भारत का संविधान । अनुच्छेद 226।

अपील को आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि:

1. सेवा कर के संयुक्त आयुक्त ने दिनांक फरवरी, 2008 के आदेश द्वारा सेवा कर की मांग की वैधता की पुष्टि की थी । उक्त आदेश को चुनौती देते हुए अपीलकर्ता द्वारा

कोई वैधानिक अपील दायर नहीं की गई । विनिर्दिष्ट आदेश याचिका केवल मार्च, 2012 में दायर की गई । इस अवधि के दौरान अपीलकर्ता द्वारा बिना आदेश को चुनौती दिए ही उत्तरदाता/ओं द्वारा मांगे गए सेवा कर के प्रति भुगतान भी किया जाता रहा । अब अपीलकर्ता उसी विषयवस्तु से संबंधित अन्य लंबितवादों का लाभ लेना चाहता है । जब अपीलकर्ता ने मांग को चुनौती नहीं दी और केवल अन्य समानवादों में चल रही कार्यवाहियों को देखते हुए तटस्थ बना रहा, तब उनवादों में दिए गए निर्णय अपीलकर्ता को विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर करने हेतु कोई आधार प्रदान नहीं कर सकता । इस संबंध में विधि पूर्णतः स्पष्ट है । [कंडिका 1 तथा 9] [585-सी; 587-जी-एच; 588-ए-बी]।

2. वर्तमानवाद में, यद्यपि प्रश्नगत अवधि के लिए आरोपित सेवा कर राशि रुपये 11,62,728/- थी, जिसका भुगतान अपीलकर्ता द्वारा कर दिया गया है, तथापि दंड तथा ब्याज के आधार पर दायित्व भी अपीलकर्ता पर अधिरोपित किया गया है । स्थापित विधिक स्थिति यह है कि प्रश्नगत अवधि अर्थात् 9 जुलाई, 2004 से 31 मार्च, 2006 के लिए यह सेवा कर देय नहीं था, क्योंकि ऐसी देयता केवल 18 अप्रैल, 2006 से उत्पन्न होती है, जब वित्त अधिनियम, 1994 में संबंधित आरोपण धारा 66क को समाविष्ट किया गया । यह विधिक स्थिति केवल उन व्यक्तियों तक सीमित नहीं है जिन्होंने न्यायालय का आश्रय लिया, बल्कि यह विधि की घोषणा है । इसे सभी पर बाध्यकारी आदेश के रूप में माना जा सकता है । कंडिका 20 [592-डी-ई]।

3. ऐसे प्रकरण में, साम्य का संतुलन इस प्रकार स्थापित किया जाएगा कि दंड एवं ब्याज के भुगतान पर बल नहीं दिया जाए । अतः जब अपीलकर्ता विलंब से न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ, तब वह पूर्व में भुगतान किए गए सेवा कर की वापसी का अधिकारी नहीं हो सकता, किन्तु साथ ही, अपीलकर्ता को उस कर पर, जो विधि के अनुसार सर्वथा देय नहीं था, लगाए गए किसी भी ब्याज एवं दंड के भुगतान हेतु बाध्य नहीं किया जाना चाहिए । कंडिका 21 [593-जी-एच; 594-ए]।

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम अरविंद कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य (2015) 1 एस.सी.सी. 347 : [2014] 12 एस.सी.आर. 193; रूप डायमंड्स एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य (1989) 2 एस.सी.सी. 356 : [1989] 1 एस.सी.आर. 13; हरविंद्र कुमार बनाम मुख्य अभियंता, कार्मिक एवं अन्य [2005] 5 अनुपूरक एस.सी.आर. 317 - अवलंबित।

हरियाणा राज्य हैंडलूम एवं हस्तशिल्प निगम लिमिटेड एवं अन्य बनाम जैन स्कूल सोसाइटी (2003) 12 एस.सी.सी. 538; उत्तर प्रदेश जल निगम एवं अन्य बनाम जसवंत सिंह एवं अन्य (2006) 11 एस.सी.सी. 464 : [2006] 8 अनुपूरक एस.सी.आर. 916; मेसर्स डी. कावसजी एवं कंपनी एवं अन्य बनाम मैसूर राज्य एवं अन्य (1975) 1 एस.सी.सी. 636 : [1975] 2 एस.सी.आर. 511 - संदर्भित ।

हाल्सबरी के इंग्लैंड के विधि - संदर्भित।

#### नज़ीर संदर्भ

[2014] 12 एस.सी.आर. 193	अवलंबित	कंडिका 10
[1989] 1 एस.सी.आर. 13	अवलंबित	कंडिका 11
(2003) 12 एस.सी.सी. 538	संदर्भित	कंडिका 12
(2006) 8 अनुपूरक एस.सी.आर. 916	संदर्भित	कंडिका 14
[2005] 5 अनुपूरक एस.सी.आर. 317	अवलंबित	कंडिका 15
[1975] 2 एस.सी.आर. 511	संदर्भित	कंडिका 18

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: दीवानी अपील संख्या 10214 सन् 2017

मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 22.06.2016 के अंतिम आदेश से,

जो रिट अपील संख्या 790 सन् 2013 में पारित हुआ।

जी. वी. राव, ए. के. उपाध्याय, देवेन्द्र सिंह, विद्वान अधिवक्ता, अपीलकर्ता की ओर से।

यशांक अंध्यारु, वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता, तारा चन्द्र शर्मा, सुश्री सुनीता, रानी सिंह, बी. कृष्ण प्रसाद, विद्वान अधिवक्ता, उत्तरदाताओं की ओर से।

न्यायालय का निर्णय माननीय न्यायमूर्ति श्री ए. के. सिकरी द्वारा प्रदान किया गया।

1. इस अपील के माध्यम से उच्च न्यायालय की खंड पीठ द्वारा पारित दिनांक 22 जून, 2016 के आदेश की सत्यता पर प्रश्न उठाया गया है। उक्त आदेश द्वारा खंड पीठ ने अपीलकर्ता द्वारा दायर विनिर्दिष्ट आदेश याचिका में एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश की पुष्टि की तथा इस प्रकार रिट अपील को निरस्त कर दिया। अपीलकर्ता द्वारा उच्च न्यायालय में विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर की गई थी, जिसमें सेवा कर के संयुक्त आयुक्त द्वारा दिनांक 27 फरवरी, 2008 के आदेश के माध्यम से पुष्टि की गई मांग की वैधता को चुनौती दी गई थी। वस्तुतः, विनिर्दिष्ट आदेश याचिका का गुण-दोष के आधार पर विचार नहीं किया गया और उसे चार वर्ष के विलंब तथा उपेक्षा के कारण संधार्य नहीं मानते हुए निरस्त कर दिया गया। खंड पीठ ने भी एकल पीठ से सहमति व्यक्त करते हुए उसके आदेश की पुष्टि की।

2. दिनांक 23 अगस्त, 2007 का कारण बताओ सूचना-पत्र अपीलकर्ता को 'व्यवसाय सहायक सेवा' के अंतर्गत 'विदेश स्थित अभिकर्ताओं को दिए गए कमीशन' पर सेवा कर के अपूर्ण भुगतान के संबंध में प्राप्त हुआ। अपीलकर्ता ने उक्त कारण बताओ सूचना-पत्र का उत्तर प्रस्तुत कर उसका प्रतिवाद किया। तथापि, अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए आपत्तियों को अस्वीकार करते हुए सेवा कर के संयुक्त आयुक्त ने दिनांक 27 अगस्त, 2008 के आदेश द्वारा मांग की पुष्टि की। विनिर्दिष्ट आदेश याचिका मार्च, 2012 में उच्च न्यायालय में दायर की गई। चूंकि यह मांग की पुष्टि के चार वर्ष पश्चात दायर की गई थी, इस कारण

अपीलकर्ता की विनिर्दिष्ट आदेश याचिका तथा रिट अपील दोनों को निरस्त कर दिया गया।

3. यदि केवल उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर विचार किया जाए, तो यह मत बनाना गलत नहीं होगा कि मांग को दी गई चुनौती विलंबित थी। तथापि, प्रश्न यह है कि क्या अपीलकर्ता ने चार वर्ष की अवधि के पश्चात न्यायालय का आश्रय लेने में हुए विलंब का यथोचित एवं संतोषजनक स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया था। अपीलकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता के तर्कों का समस्त केंद्र इसी पक्ष पर था, यह निवेदन करते हुए कि उच्च न्यायालय ने उन स्पष्टीकरणों को पूर्णतः उपेक्षित एवं अनदेखा कर दिया, जो मार्च, 2012 में न्यायालय का आश्रय लेने हेतु पर्याप्त कारण प्रदान करते थे।

4. इस संबंध में, अपीलकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित तथ्यों का उल्लेख किया, जिनके संबंध में कोई विवाद नहीं है। जैसा कि उपर्युक्त है, अपीलकर्ता को 'विदेश स्थित अभिकर्ता को दिए गए कमीशन' पर सेवा कर के अपूर्ण भुगतान के कारण कारण बताओ सूचना-पत्र जारी किया गया था। यह अवधि 9 जुलाई, 2004 से 31 मार्च, 2006 तक की थी, जिसके दौरान अपीलकर्ता विदेश स्थित अभिकर्ता को कमीशन का भुगतान कर रहा था। यह कमीशन जूते के अपर के निर्यात के व्यवसाय के आउटसोर्सिंग के लिए दिया जा रहा था, जिसमें विदेश स्थित अभिकर्ता अपीलकर्ता की ओर से विदेशी मुद्रा में आदेश प्राप्त करने हेतु कार्य कर रहा था। सरल शब्दों में, विदेश स्थित अभिकर्ता को अपीलकर्ता द्वारा जूते के अपर के निर्यात आदेश प्राप्त करने के लिए नियुक्त किया गया था। ऐसे अभिकर्ता द्वारा प्राप्त आदेश, जो अपीलकर्ता को दिए गए, उनके आधार पर अपीलकर्ता जूते के अपर का निर्यात कर सकता था। इन्हीं आदेशों के लिए अपीलकर्ता ने विदेशी पक्ष को कमीशन का भुगतान किया। उत्तरदाता विभाग के अनुसार, उक्त कमीशन पर सेवा कर देय था, क्योंकि उक्त गतिविधि 'व्यवसाय सहायक सेवा' के अंतर्गत आती है। यही कारण था कि कारण बताओ सूचना-पत्र जारी किया गया तथा अपीलकर्ता से सेवा कर की मांग की गई, जिसे विदेशी अभिकर्ता को किए गए भुगतानों पर कटौती कर जमा करना

अपेक्षित था।

5. अपीलकर्ता ने दिनांक 2 जनवरी, 2008 के अपने उत्तर द्वारा कारण बताओ सूचना-पत्र का प्रतिवाद किया तथा यह कहा कि विदेश स्थित अभिकर्ता को प्रेषित की जाने वाली राशियों पर सेवा कर के भुगतान की देयता 16 जून, 2005 से पूर्व की अवधि पर लागू नहीं होगी, क्योंकि वित्त अधिनियम, 1994 उस अवधि में लागू नहीं था। तथापि, सेवा कर के संयुक्त आयुक्त द्वारा दिनांक 27 फरवरी, 2008 को उपर्युक्त आपत्ति को अस्वीकार करते हुए तथा सेवा कर की मांग की पुष्टि करते हुए आदेश पारित किए जाने के पश्चात, उपलब्ध वैधानिक अपील दायर कर उक्त मांग को तत्काल चुनौती नहीं दी गई। इतना ही नहीं, जब दिनांक 27 फरवरी, 2008 के आदेश द्वारा पुष्टि की गई राशि का भुगतान नहीं किया गया और अपीलकर्ता को बाध्यकारी कार्यवाही की चेतावनी दी गई कि उसके बैंक खातों को कुर्क कर लिया जाएगा, तब अपीलकर्ता ने भुगतान करना प्रारंभ किया और पाँच किश्तों में संपूर्ण सेवा कर का भुगतान कर दिया। इनमें से कुछ किश्तों का भुगतान वर्ष 2011 में किया गया तथा एक किश्त विलंब से, अर्थात् 17 सितंबर, 2016 को अदा की गई (जो प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 22 जून, 2016 के आक्षेपित निर्णय द्वारा अपील निरस्त किए जाने के पश्चात की गई)। इस प्रकार, यद्यपि अपीलकर्ता ने रुपये 11,62,728/- की सेवा कर की संपूर्ण मांग का भुगतान कर दिया, तथापि दंड एवं ब्याज के संबंध में, यद्यपि उनका भी निर्णयन किया गया था, कोई राशि अदा नहीं की गई।

6. न्यायालय के समक्ष विलंब से उपस्थित होने के संबंध में दिए गए स्पष्टीकरण पर आते हुए, अपीलकर्ता द्वारा यह कहा गया है कि वह इस तथ्य से अवगत था कि वर्ष 2007 से विभिन्न पक्षकारों द्वारा अनेक अन्य वाद लंबित थे, जो इस वास्तविक तथा सद्भावनापूर्ण विश्वास के अंतर्गत थे कि वे सेवा कर के भुगतान के लिए उत्तरदायी नहीं हैं। तथापि, अपीलकर्ता स्वयं विभागीय अपीलीय प्राधिकारियों के समक्ष वैधानिक अपील दायर करने में असमर्थ रहा, क्योंकि संगठन में प्रबंधकीय संरचना में परिवर्तन के कारण अभिलेख

गुम हो गया था, चूंकि साझेदारी फर्म विघटन की प्रक्रिया में थी और उक्त उपक्रम को एकल स्वामित्व में परिवर्तित किया जा रहा था, जो दिनांक 24 जनवरी, 2009 को संपन्न हुआ। अन्य वादों में यह विनिश्चित किया गया कि संबंधित समय में उपयुक्त प्रावधान के अभाव में सेवा कर देय नहीं था तथा यह केवल 18 अप्रैल, 2006 से देय हुआ, जब वित्त अधिनियम, 1994 में धारा 66क को आरोपण धारा के रूप में समाविष्ट किया गया। इसी आधार पर, दिनांक 26 सितंबर, 2011 को वित्त मंत्रालय ने परिपत्र संख्या एफ. संख्या 276/8/2009-सीएक्स 8 ए जारी किया, जिसमें यह कहा गया कि भारत में स्थित प्राप्तकर्ता को किसी अनिवासी या भारत के बाहर स्थित व्यक्ति द्वारा प्रदान की गई किसी करयोग्य सेवा पर सेवा कर की देयता केवल 18 अप्रैल, 2006 से उत्पन्न होगी, अर्थात् वित्त अधिनियम, 1994 की संबंधित आरोपण धारा 66क के समावेशन की तिथि से। यह परिपत्र वित्त मंत्रालय, राजस्व विभाग द्वारा तब जारी किया गया जब इस न्यायालय ने 18 अप्रैल, 2006 से पूर्व सेवा कर की लागूता के संबंध में सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क एवं सेवा कर अपीलीय अधिकरण के आदेशों को चुनौती देते हुए विभाग द्वारा दायर विशेष अनुमति याचिकाओं को निरस्त कर दिया था।

7. तत्पश्चात् ही अपीलकर्ता ने मार्च, 2012 में विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर की। अपीलकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि उपर्युक्त कारण वास्तविक थे तथा मार्च, 2012 में न्यायालय का आश्रय लेने हेतु यथोचित स्पष्टीकरण प्रदान करते हैं। यह भी प्रस्तुत किया गया कि उच्च न्यायालय में उत्तरदाताओं द्वारा दायर प्रति शपथ पत्र में यह स्वीकार किया गया है कि लंबित वादों पर सेवा कर लागू नहीं था।

8. तथापि, उत्तरदाताओं ने यह प्रतिवाद किया कि अपीलकर्ता का वाद उस श्रेणी में आच्छादित नहीं होगा, क्योंकि यह लंबित वाद का स्वरूप धारण नहीं करता, इस कारण से कि अपीलकर्ता का वाद दिनांक 27 फरवरी, 2008 को ही निष्पन्न हो गया था, जब सेवा कर के संयुक्त आयुक्त द्वारा आदेश पारित किया गया था, जिसने अपीलकर्ता द्वारा

कोई वैधानिक अपील दायर न किए जाने के कारण अंतिमता प्राप्त कर ली थी।

9. उपर्युक्त तथ्यों के वर्णन से एक बात स्पष्ट है कि सेवा कर के संयुक्त आयुक्त द्वारा दिनांक 27 फरवरी, 2008 को आदेश पारित किया गया था। उक्त आदेश को चुनौती देते हुए अपीलकर्ता द्वारा कोई वैधानिक अपील दायर नहीं की गई। विनिर्दिष्ट आदेश याचिका केवल मार्च, 2012 में दायर की गई। इस अवधि के दौरान अपीलकर्ता द्वारा बिना आदेश को चुनौती दिए ही उत्तरदाताओं द्वारा मांगे गए सेवा कर का भुगतान भी किया जाता रहा। अब अपीलकर्ता उसी विषयवस्तु से संबंधित अन्य लंबित वादों का लाभ उठाना चाहता है। जब अपीलकर्ता ने मांग को चुनौती नहीं दी और केवल अन्य समान वादों में कार्यवाहियों को देखते हुए तटस्थ बना रहा, तब उन वादों में दिए गए निर्णय अपीलकर्ता को विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर करने हेतु कोई वाद हेतु प्रदान नहीं करते। इस संबंध में विधि पूर्णतः स्पष्ट है।

10. *उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम अरविंद कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य, (2015) 1 एस.सी.सी. 347* में, विचारणीय मुख्य प्रश्न यह था कि क्या प्रस्तुत वाद में अधिकरण तथा उच्च न्यायालय का यह दृष्टिकोण सही था कि उन्होंने अधिकरण के पूर्ववर्ती निर्णय का लाभ प्रदान किया, जिसने अंतिमता प्राप्त कर ली थी क्योंकि उसे सर्वोच्च न्यायालय तक पुष्टि प्राप्त हो चुकी थी। इस न्यायालय ने यह विनिश्चित किया कि:

“23. ... हमारे समक्ष उपस्थित उत्तरदाताओं ने इन नियुक्ति निरस्तीकरण आदेशों को वर्ष 1996 तक चुनौती नहीं दी, अर्थात् 9 वर्ष की अवधि तक। इसका अर्थ है कि उन्होंने अपनी नियुक्तियों के निरस्तीकरण को स्वीकार कर लिया था। वे वर्ष 1996 में तभी सक्रिय हुए जब उन्होंने यह पाया कि अन्य कुछ व्यक्तियों, जिनकी नियुक्ति आदेश भी निरस्त किए गए थे, को राहत प्राप्त हो गई। उस समय तक 9 वर्ष व्यतीत हो चुके थे। पूर्ववर्ती निर्णय ने केवल न्यायालय के समक्ष उपस्थित पक्षकारों को राहत प्रदान की

थी । यह भी उल्लेखनीय है कि ये उत्तरदाताओं सेवा में सम्मिलित नहीं हुए थे और न ही उन कर्मचारियों की भांति कार्यरत थे, जिन्हें अधिकरण के समक्ष पूर्व वाद में सफलता प्राप्त हुई थी । वर्तमान समय तक, नियुक्ति निरस्तीकरण आदेशों के निर्गमन के पश्चात 27 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं । अतः न केवल 9 वर्ष की अवधि के पश्चात दावा याचिका दायर करने में अव्याख्यायित विलंब तथा उपेक्षा थी, बल्कि आज के समय में, अर्थात् 27 वर्ष पश्चात, अपीलकर्ताओं को इन्हें नियुक्ति प्रदान करने का निर्देश देना पूर्णतः अन्यायपूर्ण होगा, जब इन उत्तरदाताओं में से अधिकांश की आयु लगभग 50 वर्ष या उससे अधिक हो चुकी होगी।”

11. **रूप डायमंड्स एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य (1989) 2**

**एस.सी.सी. 356** में, याचिकाकर्ताओं, जो आयात-निर्यात नीति, 1982-83 के प्रयोजनों के लिए एक मान्यता प्राप्त निर्यात गृह थे, को कुछ वस्तुओं के आयात की सुविधा प्रदान नहीं की गई, जबकि उन्होंने निर्यात दायित्व का निर्वहन कर लिया था । तथापि, याचिकाकर्ताओं ने कोई कार्यवाही नहीं की और उक्त सुविधा का दावा निर्यात दायित्व के निर्वहन के चार वर्ष से अधिक समय पश्चात तथा लाइसेंस की समाप्ति के पाँच वर्ष बाद किया । चूंकि समान मामलों में, बंबई उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के अनुपालन में ऐसी सुविधा प्रदान की गई थी, तब याचिकाकर्ताओं ने वर्ष 1986 में आवेदन प्रस्तुत किया, जिसे विभाग द्वारा अस्वीकार कर दिया गया । तत्पश्चात, याचिकाकर्ताओं ने अस्वीकृति के एक वर्ष पश्चात भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन सर्वोच्च न्यायालय का आश्रय लिया । याचिका को निरस्त करते हुए, इस न्यायालय ने यह अभिमत व्यक्त किया कि:

“8. ... याचिकाकर्ताओं उन दावों को पुनः उठाने का प्रयास कर रहे हैं, जिनका उन्होंने कई वर्षों तक अनुसरण नहीं किया । याचिकाकर्ताओं सतर्क नहीं थे, बल्कि निष्क्रिय बने रहने से संतुष्ट रहे और तब तक तटस्थ बैठे रहे

जब तक किसी अन्य के वाद का निर्णय नहीं हो गया। उनके वाद को उस स्थिति के अनुरूप नहीं माना जा सकता, जहाँ किसी विधि को न्यायालय द्वारा असंवैधानिक तथा शून्य घोषित किया गया हो, जिससे व्यक्तियों को उस विधि के दबाव में किए गए भुगतानों की वसूली का अधिकार प्राप्त हो सके, जिसे बाद में शून्य घोषित किया गया हो।”

12. *हरियाणा राज्य हैंडलूम एवं हस्तशिल्प निगम लिमिटेड एवं अन्य बनाम जैन स्कूल सोसाइटी (2003) 12 एस.सी.सी. 538* में, भूमि अर्जन कार्यवाहियों को लगभग दो दशकों के पश्चात चुनौती दी गई। विलंब का स्पष्टीकरण इस आधार पर देने का प्रयास किया गया कि किसी अन्य पक्षकार ने अर्जन को चुनौती दी थी और न्यायालय से स्थगन आदेश प्राप्त कर लिया था, इसलिए उक्त कार्यवाहियों के निष्पादन के पश्चात ही याचिका दायर की जा सकती थी। इस न्यायालय ने यह अभिमत व्यक्त करते हुए याचिका को निरस्त कर दिया कि अन्य कार्यवाहियों की लंबितता अर्जन को चुनौती देने के लिए कोई उचित आधार नहीं है।

13. हाल्सबरी के इंग्लैंड के विधि में निम्नलिखित कथन किया गया है:

“यह निर्धारित करते समय कि क्या ऐसा विलंब हुआ है जो उपेक्षा के समतुल्य हो, जिन प्रमुख बिंदुओं पर विचार किया जाना चाहिए, वे हैं:

(i) दावेदार के पक्ष में अनुमोदन अथवा मौन स्वीकृति; तथा

(ii) प्रतिवादी के पक्ष में स्थिति में हुआ कोई परिवर्तन।

इस अर्थ में अनुमोदन का तात्पर्य यह नहीं है कि अधिकार के उल्लंघन के दौरान निष्क्रिय खड़े रहना, बल्कि उल्लंघन पूर्ण हो जाने के पश्चात तथा उसके बारे में दावेदार को जानकारी हो जाने के बाद उसकी सहमति से है। ऐसे मामलों में दावेदार को उपचार प्रदान करना अन्यायपूर्ण होगा, जहाँ उसके आचरण से यह उचित रूप से माना जा सकता है कि उसने अपने

अधिकार का परित्याग कर दिया है; अथवा जहाँ उसके आचरण और उपेक्षा के कारण, यद्यपि उसने उपचार का परित्याग नहीं किया हो, उसने दूसरे पक्ष को ऐसी स्थिति में पहुँचा दिया है, जिसमें उसे रखना उचित नहीं होगा यदि बाद में वह उपचार का दावा करे। ऐसे मामलों में समय का व्यतीत होना तथा विलंब अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं। इन्हीं विचारों पर उपेक्षा का सिद्धांत आधारित है।"

14. *उत्तर प्रदेश जल निगम एवं अन्य बनाम जसवंत सिंह एवं अन्य (2006)*

11 एस.सी.सी. 464 में, विवाद का विषय उत्तर प्रदेश जल निगम के कर्मचारियों की 60 वर्ष की आयु तक सेवा में बने रहने की पात्रता से संबंधित था।

15. *हरविंद्र कुमार बनाम मुख्य अभियंता, कार्मिक एवं अन्य (2005)*

*अनुपूरक 5 एस.सी.आर. 317* में, इस न्यायालय ने पूर्व में यह विनिश्चित किया था कि ये कर्मचारी वास्तव में 60 वर्ष की आयु तक सेवा में बने रहने के अधिकारी थे। उक्त निर्णय के पश्चात, उन व्यक्तियों द्वारा, जो बहुत पहले से सेवानिवृत्त हो चुके थे, उच्च न्यायालय में अनेक विनिर्दिष्ट आदेश याचिकाएँ दायर की गईं। विचारण हेतु यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि क्या वे कर्मचारी, जिन्होंने अपने सेवानिवृत्ति आदेशों को चुनौती देने के लिए समय पर कदम नहीं उठाया, उन्हें स्वीकार कर लिया तथा सेवानिवृत्ति उपरांत लाभ भी प्राप्त कर लिए, उन्हें *हरविंद्र कुमार* (उपरोक्त) के निर्णय के आलोक में राहत प्रदान की जा सकती है। न्यायालय ने विलंब तथा उपेक्षा के सिद्धांत को लागू करते हुए लाभ प्रदान करने से इंकार कर दिया। यह अभिनिर्धारित किया गया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत विवेकाधीन राहत प्रदान करने में विलंब तथा उपेक्षा एक महत्वपूर्ण तत्व है। जब कोई व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति सतर्क नहीं रहता और स्थिति को स्वीकार कर लेता है, तब उसकी विनिर्दिष्ट आदेश याचिका को कुछ वर्षों के पश्चात इस आधार पर नहीं सुना जा सकता कि उसे भी वही राहत प्रदान की जाए जो समान स्थिति वाले उन व्यक्तियों को प्रदान की गई

थी, जिन्होंने अपने अधिकारों के प्रति सतर्क रहते हुए अपनी सेवानिवृत्ति को चुनौती दी थी । न्यायालय ने यह विनिश्चित किया कि:

“उपर्युक्त रूप में संक्षेपित विधिक सिद्धांत के आलोक में, उत्तरदाताओं दोषी हैं, क्योंकि उन्होंने सेवानिवृत्ति को स्वीकार करते हुए अनुमोदन कर दिया और समय पर उसे चुनौती नहीं दी । यदि वे पर्याप्त रूप से सतर्क होते, तो अन्य व्यक्तियों की भाँति इस विषय में विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर कर सकते थे । अतः जब यह प्रतीत होता है कि दावेदारों ने समय नष्ट किया अथवा उसे व्यर्थ गंवाया और समय पर विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर करने के लिए तत्पर नहीं हुए, तब ऐसे मामलों में न्यायालय को संबंधित पदधारी को राहत प्रदान करने में अत्यंत सावधानी बरतनी चाहिए । द्वितीयतः, यह भी विचारणीय है कि संबंधित पदधारी के पक्ष में अनुमोदन अथवा परित्याग का प्रश्न क्या है तथा यदि राहत प्रदान की जाती है तो क्या अन्य पक्षकारों को प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा । वर्तमान वाद में, यदि उत्तरदाताओं ने अपनी सेवानिवृत्ति को अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन बताते हुए चुनौती दी होती, तो संभवतः निगम आवश्यक धनराशि की व्यवस्था हेतु उपयुक्त कदम उठा सकता था ताकि देयता का निर्वहन किया जा सके, किन्तु अपने अधिकारों का दावा न कर उत्तरदाताओं ने समय व्यतीत होने दिया और कुछ वर्षों के पश्चात उन्होंने दो वर्ष के लाभ का दावा करते हुए विनिर्दिष्ट आदेश याचिकाएँ दायर कीं । इससे निश्चित रूप से निगम को धनराशि एकत्र करने की आवश्यकता होगी, जिसका निगम के वित्तीय प्रबंधन पर गंभीर वित्तीय प्रभाव पड़ेगा । जब स्वयं ऐसे व्यक्ति परित्याग एवं अनुमोदन के दोषी हैं, तो न्यायालय ऐसे व्यक्तियों की सहायता के लिए क्यों आगे आए।”

16. निस्संदेह, सेवा कर की ऐसी मांग की वैधता निर्धारित किए जाने के पश्चात वित्त मंत्रालय द्वारा दिनांक 26 सितंबर, 2011 को एक परिपत्र जारी किया गया था। तथापि, ऐसी परिस्थिति में अपीलकर्ता तभी सफल हो सकता है जब उसका वाद उक्त परिपत्र की सीमाओं के भीतर समाहित होता हो। इस परिपत्र के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि बंबई उच्च न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिए जाने के पश्चात कि ऐसे मामलों में सेवा कर लागू नहीं होगा, जिसे इस न्यायालय द्वारा विशेष अनुमति याचिकाओं के निरस्त किए जाने पर यथावत रखा गया, भारत सरकार के वित्त मंत्रालय के राजस्व विभाग के केंद्रीय उत्पाद शुल्क एवं सीमा शुल्क बोर्ड द्वारा दिनांक 26 सितंबर, 2011 का यह परिपत्र जारी किया गया, जिसमें यह निर्दिष्ट किया गया कि ऐसी देयता केवल 18 अप्रैल, 2006 से उत्पन्न होगी। उक्त आदेश का प्रासंगिक अंश इस प्रकार है:

“2. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपर्युक्त निर्णयों के आलोक में, किसी गैर निवासी अथवा भारत के बाहर स्थित व्यक्ति द्वारा भारत में स्थित प्राप्तकर्ता को प्रदान की गई किसी करयोग्य सेवा पर सेवा कर की देयता 18.04.2006 से उत्पन्न होगी, अर्थात् वित्त अधिनियम, 1994 की धारा 66क के प्रवर्तन की तिथि से। बोर्ड ने इस स्थिति को स्वीकार कर लिया है। तदनुसार, निर्देश एफ. संख्या 275/11/2010-सीएक्स 8 ए, दिनांक 30.06.2010, निरस्त किया जाता है।

3. लंबित वादों में तदनुसार उपयुक्त कार्रवाई की जाए।”

17. उपर्युक्त परिपत्र से यह स्पष्ट है कि ‘लंबित वादों’ में सरकार ने ऐसे मामलों में सेवा कर के भुगतान पर बल न देने का निर्णय लिया था। अभिप्राय स्पष्ट था, अर्थात् यह परिपत्र उन मामलों पर लागू नहीं होगा जो उस तिथि तक पहले ही निष्पन्न हो चुके थे और लंबित नहीं थे। अन्यथा, वे सभी व्यक्ति जिन्होंने पूर्व में बिना किसी आपत्ति के मांग का भुगतान कर दिया था, उन भुगतानों की वापसी का दावा करने लगते। अतः यह

परिपत्र अपीलकर्ता के लिए सहायक नहीं होगा।

18. अपीलकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने *मेसर्स डी. कावसजी एवं कंपनी एवं अन्य बनाम मैसूर राज्य एवं अन्य (1975) 1 एस.सी.सी. 636* में इस न्यायालय के निर्णय पर अवलंबित किया। हमने उक्त निर्णय का सूक्ष्म परीक्षण किया है। उस वाद के तथ्यों पर विस्तार से चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। इतना कहना पर्याप्त है कि उस वाद में कर की वापसी का दावा किया गया था, जो कर विधि के अंतर्गत भूलवश अदा किया गया था और जिसे बाद में शून्य घोषित कर दिया गया। विनिर्दिष्ट आदेश याचिकाओं को विलंब के आधार पर निरस्त कर दिया गया था तथा सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की। अतः हम यह समझने में असमर्थ हैं कि यह निर्णय अपीलकर्ता के किस प्रकार सहायक है। यदि कुछ है, तो उस निर्णय का निर्णय का आधार अपीलकर्ता के विरुद्ध जाता है।

19. जैसा कि उपर्युक्त उल्लेख किया गया है, वर्तमान वाद के संदर्भ में अपीलकर्ता ने दिनांक 27 फरवरी, 2008 के निर्णयन आदेशों को कभी चुनौती नहीं दी और केवल तब सक्रिय हुआ जब अन्य वादों में यह विवाद विनिश्चित हो गया।

20. उपर्युक्त कहने के पश्चात, हम प्रस्तुत वाद में एक विशेष तथ्य पाते हैं। यद्यपि प्रश्नगत अवधि के लिए आरोपित सेवा कर की राशि रुपये 11,62,728/- थी, जिसका भुगतान अपीलकर्ता द्वारा किया जा चुका है, तथापि दंड एवं ब्याज के आधार पर दायित्व भी अपीलकर्ता पर अधिरोपित किया गया है। स्थापित विधिक स्थिति यह है कि प्रश्नगत अवधि अर्थात् 9 जुलाई, 2004 से 31 मार्च, 2006 के लिए यह सेवा कर देय नहीं था, क्योंकि ऐसी देयता केवल 18 अप्रैल, 2006 से उत्पन्न होती है, जब वित्त अधिनियम, 1994 में संबंधित आरोपण धारा 66क को समाविष्ट किया गया। यह विधिक स्थिति केवल उन व्यक्तियों तक सीमित नहीं है जिन्होंने न्यायालय का आश्रय लिया, बल्कि यह विधि की घोषणा है। इसे सभी पर बाध्यकारी आदेश के रूप में माना जा सकता है। हम *अरविंद कुमार श्रीवास्तव एवं*

**अन्य** के वाद से निम्नलिखित अभिलक्षणों को उद्धृत करते हैं:

“22. उपर्युक्त निर्णयों, जिनका अवलंबन अपीलकर्ताओं तथा उत्तरदाताओं दोनों द्वारा किया गया है, के अध्ययन से जो विधिक सिद्धांत प्रतिपन्न होते हैं, उन्हें निम्नानुसार संक्षेपित किया जा सकता है।

22.1. सामान्य नियम यह है कि जब कर्मचारियों के किसी विशेष वर्ग को न्यायालय द्वारा राहत प्रदान की जाती है, तब अन्य सभी समान रूप से स्थित व्यक्तियों के साथ भी उसी प्रकार व्यवहार किया जाना चाहिए और उन्हें भी वह लाभ प्रदान किया जाना चाहिए। ऐसा न करना भेदभाव के समान होगा तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होगा। यह सिद्धांत सेवा संबंधी मामलों में अधिक दृढ़ता से लागू किया जाना चाहिए, क्योंकि इस न्यायालय द्वारा समय-समय पर विकसित सेवा विधिशास्त्र यह प्रतिपादित करता है कि सभी समान रूप से स्थित व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए। अतः सामान्य नियम यह होगा कि केवल इस कारण कि अन्य समान रूप से स्थित व्यक्तियों ने पूर्व में न्यायालय का आश्रय नहीं लिया, उनके साथ भिन्न व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए।

22.2. तथापि, यह सिद्धांत उपेक्षा एवं विलंब तथा अनुमोदन के रूप में सुविख्यात अपवादों के अधीन है। वे व्यक्ति जिन्होंने अपने प्रकरणों में किए गए गलत कृत्य को चुनौती नहीं दी और उसे स्वीकार कर लिया तथा दीर्घ विलंब के पश्चात केवल इस कारण से सक्रिय हुए कि उनके समकक्ष, जिन्होंने समय रहते न्यायालय का आश्रय लिया था, अपने प्रयासों में सफल हो गए, ऐसे कर्मचारी यह दावा नहीं कर सकते कि समान रूप से स्थित व्यक्तियों के वाद में दिए गए निर्णय का लाभ उन्हें भी प्रदान किया जाए। उन्हें तटस्थ दर्शक के रूप में माना जाएगा तथा उपेक्षा और विलंब और/या अनुमोदन

उनके दावे को निरस्त करने के लिए वैध आधार होंगे।

22.3. तथापि, यह अपवाद उन मामलों में लागू नहीं हो सकता जहाँ न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय सभी पर बाध्यकारी आदेश हो, जिसका उद्देश्य सभी समान रूप से स्थित व्यक्तियों को लाभ प्रदान करना हो, चाहे उन्होंने न्यायालय का आश्रय लिया हो या नहीं। ऐसे निर्णय के साथ प्राधिकरणों पर यह दायित्व आरोपित होता है कि वे स्वयं ही उस लाभ को सभी समान रूप से स्थित व्यक्तियों तक विस्तारित करें। ऐसी स्थिति तब उत्पन्न हो सकती है जब निर्णय का विषय नीति संबंधी मामलों से संबंधित हो, जैसे नियमितीकरण की योजना आदि (देखें के. सी. शर्मा बनाम भारत संघ, (1997) 6 एस.सी.सी. 721 : 1998 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 226)। इसके विपरीत, यदि न्यायालय का निर्णय व्यक्ति विशेष पर बाध्यकारी हो और उसमें यह स्पष्ट रूप से या निर्णय की भाषा एवं भाव से निहित रूप से यह व्यक्त हो कि उस निर्णय का लाभ केवल न्यायालय के समक्ष उपस्थित पक्षकारों को ही प्राप्त होगा, तब जो व्यक्ति उस निर्णय के लाभ का विस्तार अपने पक्ष में चाहते हैं, उन्हें यह संतुष्ट करना होगा कि उनकी याचिका उपेक्षा, विलंब अथवा अनुमोदन से प्रभावित नहीं है।"

21. ऐसे प्रकरण में, साम्य का संतुलन इस प्रकार स्थापित किया जाएगा कि दंड एवं ब्याज के भुगतान पर बल नहीं दिया जाए। अतः जब अपीलकर्ता विलंब से न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ, तब वह पूर्व में भुगतान किए गए सेवा कर की वापसी का अधिकारी नहीं हो सकता, किन्तु साथ ही, अपीलकर्ता को उस कर पर, जो विधि के अनुसार सर्वथा देय नहीं था, लगाए गए किसी भी ब्याज एवं दंड के भुगतान हेतु बाध्य नहीं किया जाना चाहिए। इस सीमा तक उच्च न्यायालय ने इस पक्ष पर विचार न करते हुए तथा विनिर्दिष्ट आदेश याचिका को पूर्णतः निरस्त कर त्रुटि की है।

22. परिणामस्वरूप, इस अपील को आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए ब्याज एवं दंड के संबंध में की गई मांग को अपास्त किया जाता है।  
कोई व्यय नहीं।

अंकित ज्ञान

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।